P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-4* ISSUE-12* August- 2017
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

इक्कीसवीं सदी में हिन्दी साहित्य के समाजशास्त्र की दिशा

जय प्रकाश यादव
एसोसिएट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग,
एम.एम.पी.जी. कॉलेज,
मोदीनगर

सारांश

साहित्य के समाजशास्त्र में साहित्य के सामाजिक सन्दर्भ का विश्लेषण महत्वपूर्ण होता है। साहित्य का समाजशास्त्र जीवन को समग्रता में व्याख्यायित करता है। हिन्दी साहित्य के समाजशास्त्र को विकसित करने में साहित्य के समाजशास्त्र की यूरोपीय परम्परा की चिन्तन दृष्टियों का महत्वपूर्ण योगदान है। हिन्दी साहित्य के समाजशास्त्र की भारतीय परम्परा के विकास में लेखक, रचना और पाठक ने अपना अद्वितीय योगदान दिया है। समकालीन साहित्य के समाजशास्त्र द्वारा सामाजिक मूल्य चेतना एवं विश्वदृष्टि की अभिव्यक्ति हुई है। वर्तमान सदी में हिन्दी के रचनाकार अपनी प्रगतिशील चिन्तन पद्धति द्वारा साहित्य के समाजशास्त्र की नयी सैद्धन्तिकी रचने की ओर अग्रसर हैं।

मुख्य शब्द : सामाजिक उपादेयता, वस्तुनिष्ठता, आत्मनिष्ठता, सर्वहारा, जीजिविषा, सामाजिक परिवर्तन, सामाजिक यथार्थ, साम्राज्यवाद, सामंतवाद, पूँजीपति, नक्सलवाद, जनजाति, विश्वदृष्टि, प्रगतिशील, सशक्तिकरण, सैद्धांतिकी

प्रस्तावना

वर्तमान सदी में साहित्य और समाजशास्त्र के बीच रिश्ता काफी गहरा है। साहित्य के समाजशास्त्र ने समाजशास्त्रीय आलोचना और समाजशास्त्रीय पद्धति का उपयोग कर साहित्य के सामाजिक सरोकारो में पर्याप्त वृद्धि की है। साहित्य की सामाजिक उपादेयता व सामाजिक दृष्टिकोण सामाजिक परिवेश से जुड़ाव पर निर्भर करता है। साहित्यकार का समाज से जुड़ाव जितना गहरा होता है साहित्य का सामाजिक सरोकार उतना ही महान होता है।साहित्य, कला, चिन्तन के क्षेत्र में समाज और रचनाकार का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। वह समाज की संरचना उस संरचना का निर्माण करने वाली इकाईयों के योगदान का विश्लेषण करता है। प्रसिद्ध साहित्यकार गुलाब राय ने लिखा है ''समाजशास्त्रीय विश्लेषण पद्धति एक वैज्ञानिक पद्धति है, वह तथ्यों के अवलोकन परीक्षण एवं विश्लेषण की प्रणाली है, तर्काश्रित है तथा वस्तुनिष्ठ अध्ययन में निष्ठा रखती है। वस्तुनिष्ठता से उसका आशय, 'एक ऐसी योग्यता से है जिसके द्वारा अनुसंधानकर्ता स्वयं को उन दशाओं से पृथक रख सके जिनका कि वह स्वयं अंग है तथा किसी तरह के लगाव अथवा भावना के स्थान पर पक्षपात रहित तथा पूर्वाग्रहों से मुक्त तर्को के आधार पर विभिन्न तथ्यों को उनके स्वाभाविक रूप में लक्षित करने से है।''[1] पूर्वाग्रहों से मुक्त रहकर वस्तुनिष्ठता को प्राप्त किया जा सकता है। तटस्थता एवं निष्पक्षता वस्तुनिष्ठता की पहली शर्त है। साहित्य का समाजशास्त्र वस्तुनिष्ठता एवं आत्मनिष्ठता के बीच सामंजस्य बैठाने की कोशिश करता है। यह भी सच है कि साहित्य का समाजशास्त्र किसी पद्धति विचारधारा, संस्कृति एवं समाज से विमुख नहीं हो सकता। चिन्तन एवं विचार के स्रोत वही से निकलते हैं। व्यक्ति और समाज के रिश्तों का सही सन्दर्भ में तलाश साहित्य का समाजशास्त्र करता है। साहित्य का समाजशास्त्र किसी वर्ग विशेष से लगाव या किसी की उपेक्षा नहीं कर सकता। साहित्य के केन्द्र में मनुष्य है, उसके सपने हैं, उसकी जीजिविषा है। उसका कल्याण है। ऐसे में समाज के उपेक्षित एवं हाशिए के लोगों के समक्ष किसी भी प्रकार के शोषण के विरोध में साहित्य का समाजशास्त्र खड़ा होता है। वह किसान, मजदूर, सर्वहारा, दलित, आदिवासी स्त्री, अल्पसंख्यक जैसे समाज के उपेक्षित की पीड़ा, उत्पीड़न, शोषण का विरोध करता है तथा उनकी शोषण से मुक्ति की कामना करता है। हिन्दी साहित्य में यही कार्य कबीर, सूर, तुलसी, जायसी, रैदास, मीरा, निराला, महादेवी, प्रेमचन्द, रेणू, नागार्जुन आदि रचनाकारों ने किया।

अध्ययन का उद्देश्य

साहित्यकार के चिन्तन में मानवतावादी चेतना अत्यन्त प्रबल रूप से रहती है। इसी चेतना के आधार पर इक्कीसवीं सदी के आरंभिक दशकों में समकालीन समाज, सभ्यता संस्कृति, भाषा, साहित्य आदि को मानवीय परिप्रेक्ष्य में देखना इस अध्ययन का उद्देश्य है। साहित्य समाज को रचता है तथा समाज साहित्य को। इस क्रिया प्रक्रिया का अध्ययन करना भी यहाँ उद्देश्य में समाहित है। मनुष्य अपने ज्ञान द्वारा समाज का विवेचन करता है तथा वह समाजिक परिवर्तनों तथा हलचलों को समाज के उपेक्षित वर्ग के कल्याण के रूप में देखता है। यहीं रचनाकार की प्रगतिशील चेतना का परिचायक भी है। इस अध्ययन के उद्देश्य में स्त्री, दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक तथा समाज के हाशिए के लोगों की चिन्ता, पीड़ा, उत्पीड़न को सामाजिक सन्दर्भो में विश्लेषण करना तथा एक बेहतर समाज की निर्मिति की ओर अग्रसर होना समाजशास्त्रीय दृष्टि से जरूरी भी है। यही अध्ययन का उद्देश्य भी है।

साहित्यावलोकन

इक्कीसवीं सदी में साहित्य के समाजशास्त्र की दिशा के अध्ययन के लिए समाजशास्त्रीय चिन्तन की यूरोपीय एवं भारतीय दृष्टि पर विचार–विमर्श किया गया है। विचार–विमर्श के इस क्रम में एलनस्विगवुड़, ब्रेख्त, मार्क्स, तेन, ग्राम्शी आदि के साहित्य का अध्ययन किया गया है। हिन्दी साहित्य का समाजशास्त्र रचने वाले मुक्तिबोध, नामवर सिंह, मैनेजर पाण्डेय आदि के साहित्य का अवलोकन गहनता से किया गया है। इस विषय के अनुसंधान के क्रम में स्त्रीवादी लेखिकाओं उषा प्रियंवदा, नासिरा शर्मा, मैत्रेयी पुष्पा आदि के साहित्य के आधार पर भारतीय समाज का विश्लेषण किया गया है। दलित लेखकों पर विचार करते हुए उनकी आत्मकथाओं में व्यक्त दलित समाज की पीड़ा एवं उत्पीड़न का अध्ययन समाजशास्त्रीय सन्दर्भो में किया गया है।

विश्लेषण

साहित्य और समाज के रिश्ते की खोज करते हुए एलन स्विग वुड ने लिखा है ''समाजशास्त्र की भांति साहित्य भी मुख्यतः मानव समाज से सम्बन्धित है, वह समाज के साथ उसके अनुकूलन और उसके परिवर्तन की आकांक्षा से संबन्धित है।''[2] साहित्य सामाजिक परिवर्तन एवं प्रक्रियाओं से प्रभावित होता है और उसी से ऊर्जा ग्रहण करता है। मार्क्स–एंगेल्स, दुर्खीम, कॉट, जार्ज लुकाच आदि समाजशास्त्रियों ने कलात्मक संरचनाओं को समाज, विचारधारा एवं साहित्य के आपसी अन्तःक्रियाओं के सत्य के रूप में स्वीकार किया है। एलन स्विगवुड के शब्दों में ''विषय वस्तु की दृष्टि से साहित्य और समाज शास्त्र समान स्तर रखते है।''[3]साहित्य का समाजशास्त्र समाज के यथार्थ से टकराता है। वहीं से वह अपनी ऊर्जा भी ग्रहण करता है। समाज की विविधता एवं जटिलता साहित्य के समाजशास्त्र को अपने ढंग से प्रभावित करती है। साहित्य के समाजशास्त्र की निर्मिति में जीवन के अनुभव बड़े महत्वपूर्ण होते हैं। इन्ही अनुभवों से साहित्य का समाजशास्त्र अपने सौन्दर्य का अनुभव ग्रहण करता है। मुक्तिबोध की धारणा है कि ''कलाकार के लिए तीन प्रकार के संघर्ष करना आवश्यक है–एक सुन्दर कलाकृति की रचना के लिए अभिव्यक्ति का संघर्ष, दो कलात्मक चेतना के अंगरूप संवेदनात्मक, उद्देश्यों के अनुसार, जीवन जगत में भीगने, रमने, अपने कोनिजबद्धता से और अधिकाधिक दूर करने और अधिकाधिक मानवीय बनाने, आत्मसंघर्ष, तीसरे, वास्तविक जीवन के बुनियादी तथ्यों के कारण बनने वाली हलचलों का जिन्दगी के अलग–अलग ढंग के तानों–बानों का तर्जुबा हासिल करने के लिए मानव समस्याओं (गहराई से ज्ञानात्मक और संवेदनात्मक रूप से) को अनुभूत करके, मानवता के उद्धार–लक्ष्यों से एकाकार होकर वास्तविक जीवन अनुभवों की समृद्धि प्राप्त करने हेतु वह संघर्ष जिसे हम तत्व के लिए तत्व प्राप्ति के लिए संघर्ष कह सकते हैं। सच्चे मनीषी कलाकार के जीवन में तीनों संघर्ष एक साथ, स्वाभाविक रूप से चलते रहे हैं। और इसीलिए कलाकार का जीवन पीड़ा से ग्रस्त जीवन होता है, केवल सृजनपीड़ा से नहीं, अन्य पीड़ाओं से भी।''[4] समकालीन हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं ने साहित्य और समाज शास्त्र के बीच रिश्ते को यथार्थपरक ढंग से पकड़ने की कोशिश की है। उपन्यास साहित्य ने समाज को सार्थक रूप में अपनी रचना प्रक्रिया के केन्द्र में रखा है। अल्बर्ट.एन.कजिन्स ने ठीक लिखा है कि ''उपन्यास एक सामाजिक घटना है। वह सामाजिक संरचना, सामाजिक, प्रकार्य, समूहों के प्रकार, सामुदायिक बन्धनों, व्यक्ति और समाज तथा सामाजिक परिवर्तनों का कारण और परिणाम है।''[5]

व्यक्ति समाज का अभिन्न अंग है। व्यक्ति को सामाजिक सन्दर्भ ही महान बनाता है। वह अकेले अपने आपमें कुछ भी नहीं है। व्यक्ति का समाजीकरण जितना ज्यादा होगा उसकी सौन्दर्य चेतना उतनी ही प्रगाढ़ होगी। ब्रेख्त ने व्यक्ति के सामाजिक सन्दर्भ की पहचान करते हुए लिखा है कि ''वैयक्तिकता सामाजिक कारणों पर आधारित होती है और उन्हीं कारणों से व्यक्ति चेतना निर्धारित होती है। लेखक को व्यक्ति की समझदारी के लिए समाज की समझदारी हासिल करनी ही पड़ती है। दोनो सत्ताएं स्वतन्त्र नहीं होतीं वरन दोनों एक दूसरे के साथ अन्तर्ग्रथित होती है।''[6] साहित्य का समाज शास्त्र जीवन के यथार्थ के चित्रण के क्रम में समाज में व्याप्त विसंगतियों, शोषण, अत्याचार, उत्पीड़न, भ्रष्टाचार के विरूद्ध आवाज उठाता है। नामवर सिंह लिखते हैं कि ''साहित्य रचना की रचना प्रक्रिया में समाज, लेखक और साहित्य परस्पर एक दूसरे को इस तरह प्रभावित करते है कि इनमें प्रत्येक क्रमशः परिवर्तित व विकसित होता रहता है–समाज से लेखक, लेखक से समाज और साहित्य से पुनः समाज।''[7] साहित्य समाज से निरपेक्ष नहीं हो सकता। सामाजिक मूल्य साहित्य के समाजशास्त्र द्वारा संरक्षित एवं सवंर्धित होते रहते हैं।'' यह आम धारणा है कि साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब होता है। एच.तेन ने साहित्य को परिवेश एवं युग की उपज माना है। अलब्रेख्त साहित्य को सामाजिक मूल्यों के प्रतिबिम्ब के रूप में स्वीकार करता है। मार्क्सवादी चिन्तक साहित्य में सामाजिक यर्थाथ के चित्रण को आवश्यक मानते हैं। लेनिन, गोर्की के विचार इसके प्रबल समर्थक हैं। टाल्सटाय ने साहित्य को मनुष्य की एकरूपता का साधन

के रूप में स्वीकार किया है। मैथ्यू आर्नल्ड ने साहित्य को जीवन की आलोचना कहा है किन्तु नये समीक्षक एवं सौन्दर्यवादी चिन्तक इस मान्यता को स्वीकार नहीं करते और तर्क देते हैं कि साहित्य से इतर मूल्य साहित्य के चरित्र को भ्रष्ट कर देते हैं। ऐसे कलावादी घोर असामाजिक भी हैं।

मार्क्सवादी धारणा यह मानती है कि साहित्य समाज से विद्रोह की अभिव्यक्ति करता है। सामाजिक विषमताओं से अलग कर दिया गया साहित्यकार सत्ता एवं व्यवस्था के विरूद्ध खड़ा हो जाता है। पूंजीवादी समाज में अर्थव्यवस्था के केन्द्र में उत्पादन है जिसका उद्देश्य मनुष्य का कल्याण होना चाहिए किन्तु घटित यह होता है कि साध्य उत्पादन बन जाता है तथा साधन मनुष्य। ऐसी स्थिति में साहित्य और कला सर्जनात्मक मूल्यों से च्युत होकर व्यापार की वस्तु बनकर रह जाते हैं। इससे साहित्यकार एवं समाज के मध्य अमानवीय सम्बन्ध कायम हो जाता है। साहित्य एवं समाज के बीच रिश्ते की अवधारणा चेतना की समग्रता या विश्वदृष्टि पर निर्भर करती है। हीगेल, मार्क्स, जार्ज लुकाच एवं गोल्डमान ने साहित्य एवं कला की सामाजिक सन्दर्भो में व्याख्या इनके परिप्रेक्ष्य में ही किया है। साहित्य द्वारा समाज के बदलाव की भूमिका से इंकार नहीं किया जा सकता। साहित्य समाज के भौतिक, आर्थिक, राजनैतिक जीवन को प्रभावित करता है। वह आम जनता के विचारों, इच्छाओं एवं भावनों को जगाता एवं उभारता है। गोर्की के शब्दों में साहित्य समाज की क्रान्ति चेतना को जगाता है।समाज में सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिवर्तन साहित्य को सामाजिक ढांचे एवं संरचनाओं से छनकर प्रभावित करते है।

आजादी के पूर्व भारतीय समाज उपनिवेशवादियों के शोषण एवं अत्याचार से पीड़ित था। इसी उत्पीड़न से आजादी के लिए संघर्ष आरम्भ हुआ। आजादी के बाद साम्राज्यवाद से तथा जमींदारी उन्मूलन से सामंतवाद से मुक्ति मिली किन्तु सामाजिक आर्थिक गुलामी से मुक्ति नहीं मिल सकी। राजनीति के माध्यम से वे ही अवसरवादी लोग सत्ता पर काबिज हो गये जिनका मूल चरित्र साम्राज्यवादी एवं सामंतवादी था।

वर्तमान सदी में आज भी आर्थिक संसाधन कुछ पूंजीपतियों एवं सामंतवादियों के पास तक सीमित हैं। वर्तमान में पूंजीपतियों का एक नया वर्ग सांसदों, विधायकों, मेयरों, जिला पंचायत अध्यक्षों, भूपतियों, बड़े–बड़े कन्ट्रैक्टर बिल्डरों, डीलरों, दलालों के रूप में खड़ा हो गया है। इस नये वर्ग ने उत्पीड़न एवं शोषण के नये–नये तरीके इजाद कर लिए हैं। आर्थिक स्थिति भयावह है। उपभोक्तावाद चरम पर है। हर व्यक्ति के खर्चे बढ़ गये हैं। हर व्यक्ति को जीवन यापन के लिए पैसे चाहिए। युवा पीढ़ी के हाथ में एक ओर लैपटाप एवं मोबाइल तो है। किन्तु दूसरी ओर रोजगार को लेकर चिन्ता भी है। युवा बेरोजगारी का शिकार है। वह अपने खर्चे जुटाने के लिए गलत रास्ते का प्रयोग कर रहा है। स्तर इतना गिर गया है कि अच्छे पढ़े लिखी युवा डकैती–छिनैती का कार्य करने लगे हैं। समकालीन हिन्दी साहित्य समाज के इस बदलाव को एक नयी दृष्टि से देख रहा है तथा अपना समाजशास्त्र रच रहा है। भारत एक कृषि प्रधान देश है। किन्तु वर्तमान में सरकारी विकास के इतने दावों के बावजूद किसान आत्महत्याएं कर रहा है। वह कर्ज के बोझ से दबा जा रहा है। उसके उत्पादन का उचित मूल्य नहीं मिल पा रहा है। उसकी फसले वे मौसम की मार झेलने से बर्बाद हो रही हैं। इसीलिए अन्नदाता आज कल सड़कों पर है। जगह–जगह किसान आन्दोलन हो रहे है। जगह–जगह सरकार और किसानो के बीच जंग हो रही है। साहित्य के समाज शास्त्र पर इन सबका प्रभाव लक्षित हो रहा है।

वर्तमान सदी में आदिवासियों की समस्याएं भी कम नहीं हैं। अविकसित क्षेत्रों में आदिवासी आवास स्वास्थ्य, शिक्षा, सड़क, पेयजल जैसी बुनियादी समस्याओं से जूझ रहे हैं। सरकार एवं बनवासी के बीच संवाद हीनता की स्थिति है। इसी स्थिति का फायदा उठाकर कुछ नक्सलवादी उन निरीह आदिवासियों को अपने हित में प्रयोग कर रहे हैं। वे सुरक्षाबलों से उन्हें लड़के के लिए प्रेरित कर रहे हैं। नक्सलवादियों को यह पता नहीं है कि जिन सैनिकों के साथ वे लड़ रहे हैं वे भी समाज के हाशिए के लोग ही हैं। 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा ने जनजाति की तीन पीढ़ियोके संघर्ष का रोमांचक इतिहास लिखा है। यहाँ सभ्य समाज द्वारा जनजाति के प्रति घृणा, एवं द्वेष के भाव को व्यक्त किया है। जनजाति के लोग सोचते हैं कि सभ्य एवं शिष्ट कहे जाने वाले हिन्दू समाज के साथ तेल और पानी का रिश्ता कायम कर अधिक देर जिन्दा नहीं रह सकत। दलित अपनी सामाजिक स्थिति को लेकर अक्सर आन्दोलित होते रहे हैं। हमारे देश में दलितों–पिछड़ों की स्थिति किसी से छिपी नहीं है। किन्तु इनके अन्दर भी अपने स्वाभिमान को लेकर एक असन्तोष की स्थिति बनी रहती है। इससे समय–समय पर दलित सवर्णो के बीच संघर्ष हो जाया करते हैं। दलित साहित्य दलितों की समस्याओं को उठाते हुए एक अलग ही साहित्य के समाजशास्त्र की रचना करने की ओर अग्रसर है। हिन्दी के दलित रचनाकारों ने साहित्य एवं समाज को एक नये सौन्दर्य बोध के रूप में स्वीकार किया है। इनकी आत्मकथाओं में समाज की विडम्बनाएं गहरे यथार्थबोध के साथ व्यक्त हुई हैं। मोहनदास नैमिशराय (अपने–अपने पिंजरे), ओमप्रकाश वाल्मीकि (जूठन), सूरजपाल चौहान (तिरस्कृत), श्यौराज सिंह (मेरा बचपन मेरे कन्धों पर), डा0 धर्मबीर (मुर्दहिया) डा0 चमनलाल, जयप्रकाश कर्दम, सुशीला टाक भौरे, कंवल भारती आदि रचनाकारों ने जातिगत सामाजिक उत्पीड़न के रूप में आर्थिक विपन्नता, अस्पृश्यता, सामाजिक उपेक्षा पर प्रहार करते हुए मानवतावादी दृष्टिकोण विकसित करने की कोशिश की है। प्रो. चमनलाल ने ठीक लिखा है कि ''दलित साहित्य यदि यथार्थवादी साहित्य की विश्वदृष्टि से स्वयं को जोड़ता है तो जाहिर कि वैचारिक स्तर पर उसकी प्रगतिशील या मार्क्सवादी दृष्टि सम्पन्न, ब्लैक साहित्य व स्त्रीवादी या स्त्री केन्द्रित साहित्य से भी निकटता बढ़ेगी। क्योंकि ये सभी साहित्यिक प्रवृत्तियाँ भी यथार्थवाद को या कला कला के लिए बजाय कला जीवन के लिए के सिद्धान्त का प्रतिमान अपने लिए जरूरी मानते है।''[8]

वर्तमान सदी के आरम्भिक दशक में महिला लेखन ने अपना एक अलग समाजशास्त्र गढ़ा है। भारत में महिलाओं की स्थिति आरम्भ से ही चिन्ता जनक रही है। वर्तमान में स्त्रीशिक्षा एवं उसकी आत्मनिर्भरता ने उसके जीवन को एक नया आयाम प्रदान किया है और अब वह पुरूषों से कहीं भी पीछे नहीं है। वह अब घर परिवार की चार दीवारी लॉघकर डाक्टर, इंजीनियर, आई.ए.एस., पी.सी. एस. शिक्षिका, कारपोरेटहाऊस की सी.ई.ओ., एम.पी.एम.एल. मन्त्री हर पदों पर सुशोभित हो रही है। किन्तु अभी भी दलित, पिछड़ी एवं अल्पसंख्यक महिलाओं की स्थिति बहुत, चिन्ता जनक है। दलित स्त्रियां तो दलितों में भी दलित हैं क्योकि वे एक तो दलित हैं दूसरे स्त्री भी। स्त्री लेखन ने समाज में महिलाओं की स्थिति उनकी पीड़ा, उत्पीड़न एवं बेचैनी को बेबाकी से उजागर किया है। साहित्य में स्त्री की केन्द्रिय स्थिति को स्वीकार करते हुए अपनी रचना धार्मिता को आगे बढ़ा रही हैं। मैत्रेयी पुष्पा ने पुरूष वर्चस्ववादी घेरे में स्त्री की स्थिति का बेबाकी से चित्रण करते हुए स्त्री लेखन का एक नया समाजशास्त्र रचा है। किसी स्त्री के लिए अपनी इच्छा से अपने जीवन का निर्णय लेना बहुत कठिन है। मैत्रेयी ने स्त्री शिक्षा, स्त्रियों का जमीन में हिस्सा, बेरोजगारी जैसे वर्तमान प्रश्नों को यथार्थ परक ढंग से रेंखांकित किया है। स्त्री–पुरूष सम्बन्ध में सन्तुलित समानता का होना कठिन है। मैत्रेयी ने 'झूलानट' में इस प्रश्न को खोजने की कोशिश की है। वे अपनी रचनाओं में ऐसे सामाजिक लोकतन्त्र की खोज करती हैं जहाँ स्त्री को भी जगह मिले। राजेन्द्र यादव ने लिखा है ''मैत्रेयी ने सामाजिक और नैतिक रूप से उन हाशिए के लोगों की कहानियाँ कही हैं,जिन्हें सभ्य समाज किसी स्तर पर मान्यता नहीं देता। एक तरह से मैत्रेयी की सम्पूर्ण कथा यात्रा स्त्री के सशक्तिकरण की कहानी है। जहाँ वह अपने संबंधों और देह का चुनाव अपनी इच्छा से करती है। .....मैत्रेयी की शक्ति बुदेलखंड़ी और ब्रज समाज के ग्रामीण नायक नायिकाओं को सामने लाने में सबसे अधिक निखार कर आई है।''[9] इस प्रकार गांव कस्बे की पीड़ित स्त्रियों एवं गांव के जीवन संघर्ष को केन्द्र बनाकर अपने लेखन से मैत्रेयी ने साहित्य के समाज शास्त्र की पृष्ठभूमि को पूरी सिद्दत से विकसित किया है। मैत्रेयी के उपन्यासों 'वेतवा बहती रही', 'इदन्नमम', 'चाक','झूला नट', 'अल्मा कबूतरी', 'अगन पाखी','विजन', 'कही ईसुरी फाग','त्रिया–हठ' तथा कहानी संग्रहों 'चिन्हार','ललमनिया', 'गोमा हंसती है', आदि में इक्कीसवीं सदी के साहित्य के समाज शास्त्र की दिशा को परिलक्षित किया जा सकता है।

नासिरा शर्मा ने अपने उपन्यास 'सात नदियाँ एक समंदर', 'शाल्मली', 'ठीकरे की मंगनी', 'जिन्दा मुहावरे', 'अक्षयवट', 'कुइयाँजान', 'जीरो रोड़' तथा कहानी संग्रह 'शामीकागज', 'पत्थर गली','इब्ने मरियम', 'संगसार', 'सबीना के चालीस चोर''खुदा की वापसी''दूसरा ताजमहल'आदि में साहित्य के ऐसे समाजशास्त्र की निर्मिति की है जहाँ स्त्री मुक्ति के समावेशी स्वर के साथ–साथ भारतीय संस्कृति की साझी विरासत राष्ट्रीय एकता के यथार्थ के साथ व्यक्त हुई है। ''उनके चिन्तन का फलक अत्यन्त विस्तृत और गहन है। परिवार समाज, स्त्री जाति के अधिकारों से लेकर वे संसार में शांति और सुरक्षा जैसे प्रश्नों के प्रति संजीदा हैं। उनके सामने न केवल देश वरन विश्व तक की स्त्रियों के आत्माभिमान, सम्मान, सुरक्षा अस्मिता स्थापन के सवाल गंभीर रूप से खड़े हैं। वास्तव में उनकी चिन्ता के केन्द्र में पूरा स्त्री समाज है और जहाँ कहीं है वह ज्यादतियों का शिकार है, शोषित है, उत्पीड़ित है।''[10] हिन्दी की तमाम महिला लेखिकाओं मसलन चित्रा मुद्गल प्रभाखेतान, मृदुला गर्ग, अलका सरावगी, ममता कालिया, मन्नुभण्डारी उषाप्रियंवदा, मृणाल पाण्डे, मेहरून्निसा परवेज, सूर्यबाला, आदि ने अपने चिन्तन एवं लेखन द्वारा स्त्री विमर्श की ऐसी सैद्धांतिकी विकसित की है जिसमें भारतीय समाज के आधी आबादी की चिन्ता अन्तविरोधों के साथ व्यक्त हुई है।

निष्कर्ष

इक्कीसवीं सदी में हिन्दी साहित्य का समाजशास्त्र अपनी नयी सैद्धान्तिकी गढ़ रहा है। वर्तमान सदी के पहले दो दशक में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिवर्तन की हलचलें बहुत तेज रही हैं जो बामपंथी एवं दक्षिण पंथी विचार धाराओं की टकराहट रूप से सामने आ रही हैं। तेजी से बदले इस परिदृश्य में हिन्दी के साहित्यकारों ने साहित्य का नया समाजशास्त्र रचने की कोशिश की हैं। साहित्य का नया समाजशास्त्र एक एक नये सौन्दर्य बोध से सम्पन्न है जहाँ स्त्री दलित, आदिवासी, पिछड़े, अल्संख्यक समाज की चिन्ता एवं उनके तमाम मुद्दे चिन्तन एवं रचना के केन्द्र में हैं। हिन्दी साहित्य की समाजशास्त्रीय प्रणाली विकसित करने में प्रो0 मैनेजर पाण्डेय की पुस्तक 'साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका' का महत्वपूर्ण योगदान है। लेखन ने यहां समाज और साहित्य के हर रिश्ते पर समाशास्त्रीय दृष्टिकोण से विचार किया है जो इक्कीसवीं सदी में साहित्य के समाजशास्त्र की दिशा का मार्ग दर्शन कर रहा है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *गुलाब राय, साहित्य और समीक्षा, बाबू गुलाब राय ग्रन्थावली, आत्माराम एंड सन्स, दिल्ली 2005, पृ0 42*
2. *एलन स्विगवुड, द सोसियालोजी ऑफ लिटरेचर, मैक गिब्बन – की लंदन, 1972 पृ0 11*
3. *एलन स्विगवुड, द सोसियालोजी ऑफ लिटरेचर, मैक गिब्बन – की लंदन, 1972 पृ0 11*
4. *सम्पादक नेमीचन्द्र जैन, मुक्तिबोध ग्रन्थावली भाग 5, नयी कविता का आत्मसंघर्ष, राज कमल प्रकाशन नई दिल्ली, 1980, पृ0 384*
5. *अल्बर्ट एन0कजिन्स, द सोशियोलाजी आफ द वार नावेल,इंडियन जर्नलआफ सोशल रिसर्च,जुलाई 1961*
6. *ब्रर्टोल्ट ब्रेख्त, भाषाः सन्दर्भ और साहित्य, राधाकृष्ण सर्जना प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1984*
7. *नामवर सिंह, इतिहास और आलोचना, साहित्य प्रकाशन, वाराणसी, 1956*
8. *प्रो0 चमनलाल, दलित सहित्य एक मूल्यांकन, राजलाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 2009, पृ030*
9. *सम्पादक दया दीक्षित, मैत्रेयी पुष्पा तथ्य और सत्य, सामायिक बुक्स दरियागंज,नई दिल्ली 2010, पृ0 272*
10. *सं0एम.फिरोज अहमदलेख प्रो0 रामकली सर्राफ, नासिरा शर्मा एक मूल्यांकन, सामयिक बुक्स नयी दिल्ली, 2010, पृ0 297–98*